RJPP, Vol. XXIII, No.II, April 25-Sept.25, ISSN (P): 0976-3635, (e):2454-3411, Impact Factor 8.858
https://doi.org/10.31995/rjpp.2025.v23i02.036

आदिवासी स्त्रियों का जीवन संघर्षः जमीनी हकीकत और सरकारी नीतियां

आकृति
शोधार्थी (हिंदी विभाग)
प्रोफेसर राजेंद्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज
ईमेलः akriti935@gmail.com

डॉ0 बिंदु कनौजिया
शोध निर्देशक
एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी विभाग)
प्रयाग महिला विद्यापीठ डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

सारांश

इस शोध में यह स्पष्ट किया गया है कि आदिवासी स्त्रियाँ दोहरे शोषण का सामना करती है–एक ओर वे स्त्री होने के नाते लैंगिक भेदभाव झेलती हैं तो दूसरी ओर आदिवासी होने के कारण उन्हें सामाजिक और आर्थिक उपेक्षा भी सहनी पड़ती है। शिक्षा, स्वास्थ्य, भूमि अधिकार, यौन हिंसा, विस्थापन और बेरोजगारी जैसी समस्याएं उनके जीवन को प्रभावित करती हैं। हिंदी साहित्य में ब्रह्मवीर सिंह, मैत्रेयी पुष्पा, रणेन्द्र, राकेश कुमार सिंह, हरिराम मीणा, भगवानदास मोरवाल जैसे लेखकों ने आदिवासी स्त्रियों की पीड़ा और चेतना को गहराई से चित्रित किया है। ये स्त्रियाँ साहित्य में केवल पीड़िता नहीं बल्कि प्रतिरोध और संघर्ष की प्रतीक बनकर उभरती हैं। सरकारी योजनाओं जैसे वन अधिकार अधिनियम, एकलव्य विद्यालय, महिला सशक्तिकरण योजनाओं का विश्लेषण करते हुए यह भी दर्शाया गया है कि नीतियाँ तो बनी हैं, लेकिन उनका लाभ आदिवासी स्त्रियों तक सीमित रूप से ही पहुँच पाया है।

अंततः, यह शोध पत्र इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि जब तक आदिवासी स्त्रियों की आवाज़ को मुख्यधारा में स्थान नहीं मिलेगा और सरकारी योजनाओं का क्रियान्वयन ईमानदारी से नहीं होगा, तब तक उनका संपूर्ण सशक्तिकरण संभव नहीं। हिंदी साहित्य इस दिशा में एक जागरूक मंच प्रदान करता है, जो उनके संघर्ष को स्वर और सम्मान देता है।

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 05/08/25
Approved: 20/09/25

आकृति
डॉ0 बिंदु कनौजिया

आदिवासी स्त्रियों का जीवन संघर्षः जमीनी हकीकत और सरकारी नीतियां

RJPP Apr.25-Sept.25, Vol. XXIII, No. II, Article No. 36 Pg. 271-278
Online available at:
https://anubooks.com/journal-volume/rjpp-sept-2025-vol-xxiii-no2-261

https://doi.org/10.31995/rjpp.2025.v23i02.036

मुख्य शब्द

आदिवासी स्त्री जीवन, सामाजिक स्थिति, हिंदी साहित्य में आदिवासी स्त्री जीवन का स्वरूप, आदिवासी स्त्रियों का प्रतिरोध, सरकारी नीतियाँ, निष्कर्ष।

प्रस्तावना

भारतीय समाज विविधताओं से परिपूर्ण है, जिसमें आदिवासी समुदाय एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आदिवासी संस्कृति, परंपराएं और जीवनशैली भारतीय समाज की धरोहर हैं, लेकिन आधुनिकता की आंधी में यह समुदाय विशेषकर आदिवासी स्त्रियाँ निरंतर हाशिये पर धकेली जाती रही हैं। इनका जीवन संघर्ष बहुआयामी रहा है– सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्तर पर। हिंदी साहित्य में आदिवासी जीवन की अभिव्यक्ति विशेष रूप से आदिवासी विमर्श और दलित साहित्य के उद्‌भव के साथ उभर कर आई है। साहित्यकारों ने न केवल आदिवासी स्त्रियों की पीड़ा को स्वर दिया है, बल्कि उनके संघर्ष, साहस, और चेतना को भी अभिव्यक्त किया है। जैसे–जैसे स्त्री विमर्श के भीतर उपवर्गों की चेतना बढ़ी, वैसे–वैसे आदिवासी स्त्री की उपस्थिति भी अधिक मुखर होती गई।

यह शोध पत्र हिंदी साहित्य में आदिवासी स्त्रियों के चित्रण, उनकी जमीनी हकीकत तथा सरकारी नीतियों के प्रभाव की पड़ताल करता है। इसमें आदिवासी स्त्रियों की दुर्दशा, शोषण, विस्थापन, अशिक्षा और लैंगिक भेदभाव के मुद्दों के साथ–साथ उनके सशक्तिकरण के प्रयासों की विवेचना भी की गई है।

आदिवासी स्त्रियों की सामाजिक स्थिति और चुनौतियाँ– भारतीय समाज की संरचना में आदिवासी समुदाय एक विशिष्ट स्थान रखता है जिसकी पहचान उसकी सांस्कृतिक विविधता, प्रकृति–आधारित जीवनशैली और पारंपरिक ज्ञान से होती है। इस समुदाय की स्त्रियाँ न केवल सामाजिक संरचना की रीढ़ हैं बल्कि आर्थिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में भी समान रूप से भागीदारी करती हैं। फिर भी आधुनिक समय में आदिवासी स्त्रियाँ कई प्रकार की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चुनौतियों का सामना कर रही हैं जो उनके जीवन को संकटग्रस्त बनाती हैं।

1. सामाजिक उपेक्षा और दोहरा शोषण–

आदिवासी स्त्रियों की सामाजिक स्थिति आज भी हाशिए पर है। वे न केवल जातीय और वर्गीय भेदभाव की शिकार हैं, बल्कि लिंग आधारित असमानता भी उनके जीवन को जटिल बनाती है। उन्हें सामाजिक संरचना में अक्सर निम्न स्थान प्राप्त होता है, जहाँ उनकी भूमिका केवल पारिवारिक श्रम तक सीमित मानी जाती है। इसके साथ ही बाहरी समाज उन्हें पिछड़ा और अशिक्षित मानकर उनके साथ भेदभाव करता है। 'दंड का अरण्य' उपन्यास की 'बुधरी' परिवार का भरण–पोषण का दायित्व निभाती हुई पत्नी के रूप में, 'धूणी तपे तीर' उपन्यास की पति सेवा धर्म निभाती हुई स्त्री के रूप में,'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास की 'लाली' तथा 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास की 'सुकुरमुनी' सहयोगी पत्नी के रूप में, 'पठार पर कोहरा' उपन्यास की 'रंगेनी' मां के रूप में अपना कर्तव्य पालन करती हुई चित्रित की गई है। 'ब्रह्मवीर सिंह' द्वारा रचित हिंदी 'दंड का अरण्य' उपन्यास में आदिवासी नारी के कर्तव्यपरायणता का चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में बुधरी की कर्तव्य परायणता उपन्यासकार ने इन शब्दों में व्यक्त किया है– "बुधरी परिवार की जीवन रेखा थी। दिन भर

के कामों में खपी रहती। परिवार चलाने के लिए लखू से ज्यादा मेहनत करती। महुआ बीनती, हल जोतने में मदद करती और धान लगाने से लेकर लकड़ी इकट्ठा करने तक उसकी रोज की जिंदगी का हिस्सा थी। उसने जिम्मेदारी से जी नहीं चुराया।"

2. शिक्षा की कमी और अशिक्षा की बाधा–

आदिवासी स्त्रियाँ आज भी शिक्षा से वंचित हैं। प्राथमिक विद्यालयों की कमी, विद्यालयों की दुर्गमता, भाषा की असमानता और आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण लड़कियाँ पढ़ाई बीच में छोड़ने को मजबूर होती हैं। इसके अतिरिक्त, बाल विवाह और घरेलू जिम्मेदारियाँ भी उनकी शिक्षा में बड़ी बाधा हैं। अशिक्षा उनके आत्मविश्वास, निर्णय क्षमता और अधिकारों के प्रति जागरूकता में कमी लाती है। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास की 'कदमबाई' और 'भूरी' तथा अन्य नारियाँ, 'पठार पर कोहरा' उपन्यास की 'रंगेनी', 'जंगल जहां शुरू होता है'उपन्यास की 'बिसराम बहू' तथा 'मलारी', 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास की 'सुकुरमुनी' में इत्यादि अशिक्षित नारियों के रूप में चित्रित की गई है। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास की 'भूरी' शिक्षा का महत्व जानती है। इसलिए भूरी अपने बेटे राम राम सिंह को पढ़ाना चाहती थी ताकि वह पढ़ लिखकर इस काबिल बन जाए कि वह अन्याय के खिलाफ आवाज उठा सके। 'भूरी' शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करती हुई कहती है कि ''विद्या का दामन थामा है तो बेबसी और बंदरगतों से गुजरना होगा।''

3. स्वास्थ्य सुविधाओं की अनुपलब्धता–

आदिवासी क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की गंभीर कमी है। वहाँ उचित चिकित्सक, दवाइयाँ और प्रसव सुविधाएँ नहीं होतीं। इसका सीधा प्रभाव महिलाओं के स्वास्थ्य पर पड़ता है। गर्भवती स्त्रियों की मृत्यु दर, कुपोषण, और प्रजनन संबंधी बीमारियाँ आम हैं। स्वास्थ्य संबंधी अंधविश्वास और पारंपरिक इलाज पर निर्भरता भी उनकी स्थिति को और खराब करती है। 'ग्लोबल गांव का देवता' उपन्यास में 'रणेन्द्र' ने मलेरिया से होने वाली मौत का जिक्र करते हुए उसकी भयावहता को प्रस्तुत करते हैं। चिकित्सा व्यवस्था में भारी कमी के कारण प्रतिदिन कोई ना कोई आदिवासी मलेरिया से लड़ते हुए दम तोड़ देता है। गैर सरकारी अस्पताल में इलाज हेतु अधिक राशि की आवश्यकता होती है जिसका भुगतान करने में आदिवासी असमर्थ होते हैं। इसके अतिरिक्त अज्ञानता के कारण भी यह उपचार करने में विलंब कर देते हैं। जिस कारण मलेरिया जानलेवा सिद्ध हो जाती है। ऐसी ही घटना का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने कहा है "सोमा की बहन जो थोड़ी दूर पर ब्याही थी दो–तीन दिन पहले उसे माथे वाला बुखार, सेरेब्रल मलेरिया हो गया था। ससुराल के लोग दामाद, समधी सब उसे ढो–ढोकर शहर के प्राइवेट क्लीनिक में पहुंचाये। क्या–क्या दवा पानी चढ़ाया सब फिर भी बेटी नहीं बची।" 'महुआ मांझी' द्वारा रचित 'मारंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में 'सुकुरमुनी' कैंसर पीड़ित है। खदानों में खनन कार्य के पश्चात यूरेनियम की सफाई ठीक से न होने के कारण बरसात के पानी में बहकर वह पूरी तरह से पर्यावरण में फैल जाता है और पूरा गांव इसकी चपेट में आ जाता है। सुकुरमुनि का पति भी यूरेनियम के प्रभाव से बहुत बीमार हो जाता है और खून की उल्टियां करता है। सुकुनमुनी स्वयं कैंसर पीड़ित होकर भी दिन रात जंबीरा की सेवा करती है। इस दौरान कैंसर के असहनीय दर्द से छटपटाते हुए पेट पड़कर बैठ जाती है। फिर कहती है ''आह! खूब दर्द हो रहा है रे! फिर देर तक छटपटाती रहती।''

4. यौन शोषण और सुरक्षा का संकट–

आदिवासी स्त्रियाँ अक्सर यौन हिंसा का शिकार बनती हैं। विशेषकर तब जब वे शहरी क्षेत्रों में मजदूरी के लिए जाती हैं या जब उनके गाँव में पुलिस या विकास परियोजनाओं के लिए बाहरी लोग आते हैं। इसी प्रकार का चित्रण राकेश कुमार सिंह ने 'महाअरण्य में गिद्ध' उपन्यास में किया है। उपन्यास का पात्र सुधीर आदिवासी इलाके में वीडियो के पद पर कार्यरत है। सभी आदिवासी उसका सम्मान करते हुए उसे अपने सामाजिक उत्सवों में आमंत्रित करते थे। सुधीर अपने पर्वों में शामिल तो होता किंतु मात्रा आदिवासी नारियों का चयन कर उसे अपनी वासना तृप्ति करवाने के लिए। सुबीर योगी के साथ मेले में वासना तृप्ति के लिए आदिवासी नारियों के शरीर को गिद्धों की भांति निहारत हुए उनके शरीर के बनावटों को विचित्र उपमाएँ देते हुए कहता है कि ''इसकी चमड़ी बहुत सख्त है मजा नहीं आएगा।"

"भई इसमें मांसलता है ही नहीं। बगैर मांस के क्या हड्डियों का अचार डालेंगे!''

''इसकी छातियाँ तो सपाट पिच हैं। छोड़ो यार।''

''इसकी ब्रेस्ट तो पहाड़ियां बनी हुई हैं, हाथ में ही नहीं आएँगी।''

''अरे यार इसकी टांगे,इसकी बाँहें, सूखी झाड़ झटाएँ दिख रही हैं।"

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी स्त्रियाँ एक ऐसी त्रासदीपूर्ण परिस्थिति में जी रही हैं जहाँ उनकी पहचान, अधिकार, और गरिमा सभी संकटग्रस्त हैं। सामाजिक असमानता, शोषण और सरकारी उपेक्षा ने उन्हें बहुआयामी संघर्ष के लिए विवश किया है। उनके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक स्वतंत्रता, और कानूनी सुरक्षा जैसे मूलभूत अधिकारों की उपलब्धता ही उनके सशक्तिकरण की आधारशिला हो सकती है। यह आवश्यक है कि समाज और शासन मिलकर उनकी स्थिति को सुधारने हेतु ठोस प्रयास करें, न कि केवल नीतियों के कागजी वादे।

सरकारी नीतियाँ और उनकी प्रभावशीलता (आदिवासी स्त्रियों के संदर्भ में)–भारत सरकार ने आदिवासी समुदाय के कल्याण के लिए अनेक योजनाएँ और नीतियाँ लागू की हैं, जिनका उद्देश्य सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से आदिवासियों को सशक्त बनाना है। इन नीतियों में आदिवासी स्त्रियों को विशेष लाभ देने की बात भी कही गई है। लेकिन जब इन नीतियों को जमीनी स्तर पर लागू करने की बात आती है, तो कई खामियाँ सामने आती हैं। यह खंड आदिवासी स्त्रियों से संबंधित प्रमुख सरकारी नीतियों और उनकी वास्तविक प्रभावशीलता की समीक्षा करता है।

1. वन अधिकार अधिनियम (Forest Rights Act) (2006)– यह अधिनियम आदिवासी समुदायों को उनके परंपरागत वन अधिकारों की मान्यता देता है। इसमें महिलाओं के नाम पर भी व्यक्तिगत या सामुदायिक भूमि अधिकार देने का प्रावधान है।

प्रभावशीलता– सिद्धांत रूप में यह अधिनियम आदिवासी स्त्रियों को भूमि स्वामित्व देने में क्रांतिकारी माना गया। लेकिन व्यवहार में ज्यादातर भूमि अधिकार पुरुशों के नाम पर ही दर्ज किए जाते हैं।कई राज्यों में पंचायत या प्रशासनिक इकाइयाँ महिलाओं को मालिकाना हक देने में संकोच करती हैं। इसके अलावा, कई मामलों में उन्हें कानूनी प्रक्रिया की जानकारी न होने के कारण वे अपने अधिकारों के लिए दावा नहीं कर पातीं।

2. शिक्षा और छात्रवृत्ति योजनाएँ– सरकार ने आदिवासी लड़कियों के लिए विशेष छात्रवृत्तियाँ, मुफ्त शिक्षा, और छात्रावास सुविधाएँ प्रदान की हैं, जैसे– एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय (EMRS), प्री–मैट्रिक और पोस्ट–मैट्रिक छात्रवृत्तियाँ, सर्व शिक्षा अभियान और बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना।

प्रभावशीलता– कुछ क्षेत्रों में इन योजनाओं ने आदिवासी लड़कियों की स्कूल उपस्थिति बढ़ाई है।लेकिन दूरस्थ क्षेत्रों में स्कूलों की कमी, शिक्षकों का अभाव और भाषा संबंधी समस्याएँ अभी भी बाधा बनी हुई हैं। कई लड़कियाँ घरेलू कार्यों, बाल विवाह या सुरक्षा की चिंता के कारण शिक्षा पूरी नहीं कर पाती।

3. महिला सशक्तिकरण की योजनाएँ– सरकार ने आदिवासी स्त्रियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता बढ़ाने के लिए कई योजनाएँ शुरू की हैं। जैसे– राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM), स्वयं सहायता समूह (SHG) योजना, जननी सुरक्षा योजना (मातृत्व स्वास्थ्य के लिए)।

प्रभावशीलता– SHG के माध्यम से कुछ क्षेत्रों में महिलाएँ स्वरोजगार, सिलाई–कढ़ाई, बकरी पालन आदि कार्यों में सक्रिय हुई हैं। लेकिन इन योजनाओं का लाभ सीमित वर्ग तक ही पहुँच पाया है, खासकर जहाँ NGO या स्वयंसेवी संस्थाएँ सक्रिय हैं। बैंकिंग सेवाओं की कमी, प्रशिक्षण की अनुपलब्धता, और प्रशासनिक अड़चनें इन योजनाओं की सफलता में बाधक हैं।

4. स्वास्थ्य सेवाएँ और पोषण योजनाएँ– आंगनवाड़ी केंद्र, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (NHM), जननी सुरक्षा योजना, और मातृत्व लाभ योजना आदि के माध्यम से गर्भवती स्त्रियों, नवजात बच्चों और किशोरियों को सहायता देने का प्रावधान है।

प्रभावशीलता– स्वास्थ्य केंद्रों की कमी, दवाओं की अनुपलब्धता, और प्रशिक्षित नर्सों व डॉक्टरों की कमी के कारण आदिवासी स्त्रियों को इसका पूर्ण लाभ नहीं मिल पाता। कई बार योजनाओं की जानकारी न होने के कारण भी महिलाएँ स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित रह जाती हैं।

5. राजनीतिक भागीदारी और पंचायती राज– 73वाँ संविधान संशोधन आदिवासी महिलाओं को पंचायतों में आरक्षण प्रदान करता है, जिससे वे राजनीतिक निर्णयों में भाग ले सकें।

प्रभावशीलता– कुछ महिलाएँ निर्वाचित तो हुई हैं, लेकिन पुरुषों द्वारा नियंत्रण, 'प्रॉक्सी' व्यवस्था और निर्णय प्रक्रिया में निष्क्रियता उनकी स्वतंत्र भूमिका को सीमित करती है। जहाँ महिलाएँ शिक्षित और जागरूक हैं, वहाँ उनकी भागीदारी सकारात्मक परिवर्तन ला रही है।

सरकारी नीतियाँ आदिवासी स्त्रियों की स्थिति सुधारने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हैं, लेकिन इनकी सफलता नीति निर्माण से अधिक क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। जब तक नीतियाँ कागज़ों से बाहर निकलकर गाँवों और बस्तियों तक प्रभावी रूप से नहीं पहुँचतीं, तब तक वास्तविक बदलाव संभव नहीं। नीतियों की सफलता के लिए आवश्यक है– जमीनी स्तर पर निगरानी, स्थानीय भाषाओं में जागरूकता अभियान, महिला केंद्रित दृष्टिकोण और समुदाय की सक्रिय भागीदारी।

आदिवासी स्त्रियों का प्रतिरोध और जागरूकता– आदिवासी स्त्रियाँ भले ही लंबे समय से शोषण, उपेक्षा और असमानता का शिकार रही हैं, लेकिन उनका संघर्ष केवल पीड़ा की कहानी नहीं है; वह प्रतिरोध, साहस और आत्मसम्मान की प्रेरक गाथा भी है। बदलते समय के साथ इन स्त्रियों

में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी है और उन्होंने अनेक स्तरों पर शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाई है।

1. साहित्यिक और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति– हिंदी साहित्य में आदिवासी स्त्रियों की प्रतिरोध चेतना प्रकट हुई है। 'राकेश कुमार सिंह' ने अपने उपन्यास 'जो इतिहास में नहीं है' में आदिवासी नारियों के साहस एवं शौर्य का वर्णन इन शब्दों में किया है –''उरांव स्त्रियों ने माथे पर पगड़ी बांधी। दुधमुँहे शिशुओं को चादर में लपेटकर पीठ पर बेतरा बांधा। अब उराँव स्त्रियों के नस–नस कमान बन चुकी थी। उँगली–उँगली तीर–तीर अचंभित पठानों के पैर उखड़ गये। पठानों ने पुनः प्रयास किया। पुनः विफल रहे। उरांव स्त्रियों के प्रबल प्रतिरोध ने पठानों की किले के प्राचीरों के पास भी नहीं फटकने दिया। हर प्रयास सफल रहा। हर बार शाह से उराँव स्त्रियाँ उन्हें पहाड़ से नीचे उतर जाने पर विवश करती रहीं।'' इसी प्रकार एक प्रेरणादायी आदिवासी नारी का वर्णन 'हरि राम मीणा' द्वारा रचित 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में हुआ है। इस उपन्यास में गोविंद गुरु आदिवासियों में चेतना जागते हुए अन्याय के खिलाफ आंदोलन आरंभ करते हैं। इस आंदोलन में नारियों भी बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेती हैं। इस आंदोलन में कमली भी युवकों के भांति अपना योगदान देना चाहती है। किंतु बंदूक चलाने में असमर्थता को देखते हुए कमली की सहेलियाँ उस पर व्यंग्य करती हैं। तब कमली अपनी सहेलियों को बंदूक के जरिए नहीं बल्कि गोफन के सहारे आंदोलन में योगदान देने को प्रेरित करती हुई करती है, ''छोरे जब बंदूक चलायेंगे तो हम क्या गोफन नहीं चला सकती?" इसी प्रकार सजग एवं चेतनशील नारी का वर्णन 'रेत' उपन्यास में 'भगवान दास मोरवाल' ने किया है। कंजर समाज की कुछ नारियों का देहव्यापार से संलग्न होने के कारण अक्सर पुलिस उन्हें थाने में बुलाकर उन्हें वर्दी का डर दिखा कर उनका इस्तेमाल करना चाहते हैं। इस मामले में कंजर नारियां अपने पूर्व अनुभवों से सचेत हो चुकी हैं। अब जब थानेदार द्वारा कंजर नारियों को थाने में बुलाकर उन्हें कानून के नाम से डराया जाता है तब वह उल्टे थानेदार को ही कानून समझाने लग जाती हैं। इस संदर्भ का वर्णन उपन्यास में इस प्रकार से हुआ है, ''हवलदार ऐसे डिरामें में हम रोज देखती हैं। जो कहना है साफ–साफ क्यों नहीं कहता। कायदे से धंधे के इल्जाम में हमें हवालात में बंद करने का हक थानेदार को नहीं डी.जी.पी को होता है ज्यादा से ज्यादा यह हमें एक सौ इक्यावन में रख सकता है एकाध दिन हवालात में। हमें मत समझाओ कायदे–कानून।''

2. राजनीतिक जागरूकता और संगठनात्मक सक्रियता– आज कई आदिवासी महिलाएँ पंचायतों में जनप्रतिनिधि बनकर अपनी भूमिका निभा रही हैं। छत्तीसगढ़ की सोनी सोरी, जो खुद आदिवासी महिला हैं, ने पुलिस उत्पीड़न और भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज़ उठाई। उन्होंने न केवल अपने समुदाय के हक की लड़ाई लड़ी, बल्कि आदिवासी महिलाओं के लिए प्रेरणास्रोत बन गईं।

3. साहित्यिक लेखन में भागीदारी– अब कई आदिवासी महिलाएं स्वयं लेखन की ओर अग्रसर हैं। जिसमें एलिस एक्का, ग्रेस कुजूर, तेमसुला आओ, निर्मला पुतुल, ममंग दई, रोज केरकेट्टा, वंदना टेटे, सुशीला सामद आदि प्रमुख हैं। 'एलिस एक्का की कहानियाँ(संपादक वंदना टेटे), द ब्लैक हिल(मामांग दई) 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' और 'अपने घर की तलाश में'(निर्मला पुतुल) आदि प्रमुख है।

आदिवासी स्त्रियों का प्रतिरोध केवल विरोध का माध्यम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक चेतना, आत्मसम्मान और अस्तित्व की रक्षा का मार्ग है। साहित्य, आंदोलन और संगठनात्मक भागीदारी के माध्यम से वे अपने अधिकारों के लिए जागरूक और संगठित होकर खड़ी हो रही हैं। उनका यह प्रतिरोध सामाजिक परिवर्तन की दिषा तय कर रहा है।

निष्कर्ष

आदिवासी स्त्रियों का जीवन अनगिनत चुनौतियों से भरा हुआ है। पारंपरिक अधिकार, आधुनिक व्यवस्था, सामाजिक भेदभाव और सरकारी तंत्र के बीच उनका संघर्श गहराता जाता है। हिंदी साहित्य ने आदिवासी स्त्रियों के जीवन संघर्ष को गंभीरता और संवेदना से अभिव्यक्त किया है। यह चित्रण केवल करुणा नहीं, बल्कि चेतना और प्रतिरोध का स्वर है। वहीं सरकारी नीतियों में प्रयास तो हुए हैं, परंतु उनका प्रभाव तभी सार्थक होगा जब क्रियान्वयन में पारदर्शिता और समुदाय की भागीदारी हो। आदिवासी स्त्री विमर्श हमें यह सिखाता है कि हाशिये पर खड़ी स्त्रियों की आवाज़ें भी साहित्य और समाज में परिवर्तन ला सकती हैं, यदि उन्हें सही मंच और मान्यता मिले।

संदर्भ

1. सिंह. ब्रह्मवीर. (2012), दंड का अरण्य, दिल्ली, प्रभात प्रकाशन।
2. पुष्पा. मैत्रेयी, (2016), अल्मा कबूतरी, नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
3. रणेन्द्र. (2022), ग्लोबल गांव का देवता, दिल्ली, वाणी प्रकाशन।
4. सिंह, राकेश कुमार. (2015), महाअरण्य में गिद्ध, नयी दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ
5. https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1986040#:~:text=%E0%A4%B5%E0%A4%B9%E%A5%80%E0%A4%82%20%E0%A4%B8%E0%A5%80%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%A8%20%E0%A4%B8%E0%A5%88%E0%A4%95%E0%A4%82%E0%A4%A1%E0%A4%B0%E0%A5%80%20%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A4%B0%20(11%E0%A4%B5%E0%A5%80%E0%A4%82,%E0%A4%B5%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A5%8B%E0%A4%82%20%E0%A4%95%E0%A5%8B%20%E0%A4%B2%E0%A4%BE%E0%A4%AD%20%E0%A4%AA%E0%A4%B9%E0%A5%81%E0%A4%82%E0%A4%9A%E0%A4%BE%20%E0%A4%B9%E0%A5%88%E0%A5%A4
6. सिंह, राकेश कुमार, (2005), जो इतिहास में नहीं है, नयी दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ।
7. मीणा, हरिराम, (2008), धूणी तपे तीर।
8. http://ttwd.assam.gov.in/
9. https://mpvanmitra.mkcl.org/hi/vanadhikar-kayda
10. मोरवाल, भगवान दास, (2016), रेत, नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।

11. मांझी, महुआ, (2019) मोरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
12. https://hrf.net.in/national-consultation-for-strengthening-local-government-and-dalit-and-women-elected-representatives/#:~:text=%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A7%E0%A4%BE%E0%A4%A8%20%E0%A4%95%E0%A5%87%2073%20%E0%A4%B5%E0%A5%87%E0%A4%82%20%E0%A4%94%E0%A4%B0%2074%20%E0%A4%B5%E0%A5%87%E0%A4%82,%E0%A4%95%E0%A5%87%20%E0%A4%85%E0%A4%A8%E0%A5%81%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%B0%20%E0%A4%86%E0%A4%B0%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%B7%E0%A4%A3%20%E0%A4%95%E0%A5%80%20%E0%A4%97%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%82%E0%A4%9F%E0%A5%80%20%E0%A4%A6%E0%A5%80%20%E0%A4%97%E0%A4%88%E0%A5%A4